प्रश्न : *आपने ईश्वर तक पहुंचने के दो मार्ग–प्रेम और ध्यान बताए हैं। मेरी स्थिति ऐसी है कि प्रेम–भाव मेरे हृदय में उमड़ता नहीं। ऐसा नहीं कि मैं किसी को प्रेम नहीं करना चाहती। वह मेरे व्यक्तित्व का प्रकार नहीं। चुप रहना और शांत बैठना मुझे अच्छा लगता है। इसलिए मैंने ध्यान का मार्ग चुन कर साक्षी की साधना शुरू की। अब कठिनाई यह है कि जैसे ही मैं सजग होकर देख रही हूं कि मैं विचारों को देख रही हूं, तो विचार रुक जाते हैं और क्षणिक आनन्द का अनुभव होता है, फिर विचारों का तांता शुरू हो जाता है। और फिर–फिर मेरा उनको देखना और बार–बार यही सब। मेरी स्थिति में प्रगति दिखाई नहीं देती। क्या कहीं कोई भूल हो रही है? अथवा मेरा ध्यान के मार्ग का चुनाव गलत है? कृपा करके मुझे मेरा मार्ग बताएं, ताकि और समय व्यर्थ न खो जाए और आपको चूक न जाऊं।*

ध्यान में अपने से मिलो प्रेम में सबसे से मिलो

और अंत में प्रेम ध्यान एक हो जाते हैं

यह सच है कि उस परम सत्य को पाने के लिए प्रेम और ध्यान दो मार्ग हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ध्यानी को प्रेम-शून्य होना पड़ेगा। न ही इसका यह अर्थ है कि प्रेमी को ध्यान की कोई चिंता न करनी पड़ेगी।

यह थोड़ा सा दुरूह मालूम पड़ेगा। यह केवल प्राथमिक रूप से चुनाव की बात है। अगर तुमने प्रेम को अपना मार्ग चुना है, तो ध्यान छाया की तरह तुम्हारे साथ आएगा। क्योंकि प्रेम, और ध्यान को न लाए, तो प्रेम नहीं है, वासना है। प्रेम में और वासना में भेद ही क्या है? इतना ही भेद है कि वासना के पीछे ध्यान की कोई छाया नहीं होती, और प्रेम के पीछे ध्यान की छाया होती है। और अगर तुमने ध्यान का मार्ग चुना है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम प्रेम-शून्य, काठ के उल्लू हो जाओगे। ध्यान तुम्हारी साधना होगी, लेकिन तुम्हारे जीवन में प्रेम के फूल खिलने शुरू हो जाएंगे।

प्रेम और ध्यान सिर्फ तुम्हारे रुझान की बात है। अन्यथा वे ऐसे ही हैं, जैसे किसी पक्षी के दो पंख। उनमें से एक भी कट जाए तो पक्षी का उड़ना मुश्किल है। वे ऐसे ही हैं, जैसे तुम्हारे पैर। वे ऐसे ही हैं, जैसे कोई नाव को दो पतवारों को लेकर चलाता है। एक पतवार छूट जाए तो नाव एक ही जगह चक्कर मारती रहेगी।

तुम्हारी यही भूल हो गई। तुमने प्रेम का अर्थ नहीं समझा। तुमने प्रेम का वही अर्थ समझा, जो कि बंबई में समझा जा सकता है। गए चौपाटी पर और समझ गए प्रेम का अर्थ।

प्रेम एक सद्भाव है इस सारे अस्तित्व के प्रति। प्रेम एक करुणा है, जिसके ऊपर कोई पता नहीं। प्रेम एक आनन्द है—जैसे फूल खिलता है और उसकी बास चारों दिशाओं में बिखर जाती है, नहीं खोजती किन्हीं नासापुटों को।

मैंने सुना है, चीन में एक बौद्ध भिक्षुणी थी। बुद्ध से उसका बड़ा प्रेम था, ऐसा वह समझती थी। उसने अपनी सारी संपत्ति बेच कर बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा बना ली थी। और रोज बुद्ध की उस स्वर्ण-प्रतिमा की वह पूजा करती थी। एक ही मुश्किल थी। ऊदबत्तियां जलाती—अब धुएं का क्या भरोसा? कभी बुद्ध की यात्रा भी करता और कभी बुद्ध के विपरीत भी चला जाता। धूप जलाती—अब धुएं का क्या भरोसा? और धुएं को क्या मतलब? जहां हवाएं ले जातीं, चला जाता। वह बड़ी परेशान थीं। और परेशानी और बढ़ गई, क्योंकि वह जिस विशाल मंदिर में ठहरी हुई थी... संभवतः वह दुनिया का सबसे बड़ा विशाल मंदिर है अब भी शेष। न मालूम कितनी सदियां लगी होंगी उस मंदिर को बनाने में। एक पूरा पहाड़ खोद कर वह मंदिर बनाया गया है। उसमें एक हजार बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। वह एक हजार बुद्धों का मंदिर कहलाता है। और एक से एक प्रतिमा सुंदर हैं। इस भिक्षुणी की मुसीबत यह थी कि यह अपने बुद्ध को धूप देती, ऊदबत्ती जलाती, फूल चढ़ाती... और दूसरे बुद्ध बेईमान मजा लेते। यह असह्य था। इसे वह प्रेम समझती थी। बहुत सोचा, क्या करें? तब उसने एक बांस की पोंगरी बना ली। और जब धूप को जलाती तो बांस की पोंगरी से उसके धुएं को अपने बुद्ध की नाक तक ले जाती। अब गरीब बुद्ध, सोने के बुद्ध कुछ कह भी नहीं सकते कि यह तू क्या कर रही है, पागल! बुद्ध की नाक, उनकी आंख, उनका मुंह सब काला हो गया। तब वह बहुत घबड़ाई। वह मंदिर के पुजारी के पास गई और उसने कहा कि मैं क्या करूं, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ी हूं। अगर बांस की पोंगरी का उपयोग नहीं करती तो मेरी धूप मेरे बुद्ध को नहीं पहुंचती, मेरी सुगंध मेरे बुद्ध को

पोंगरी का उपयोग नहीं करती तो मेरी धूप मेरे बुद्ध को नहीं पहुंचती, मेरी सुगंध मेरे बुद्ध को नहीं पहुंचती। और दूसरे बेईमान बुद्धों की ऐसी भीड़ है, एक हजार बुद्ध चारों तरफ मौजूद हैं कि कब कौन खींच लेता है उस सुगंध को, मेरी समझ में नहीं आता। सो मुझ गरीब औरत ने यह पोंगरी बना ली। अब इस पोंगरी से एक नई उपद्रव की स्थिति गई। बुद्ध का मुंह काला हो गया।

उस पुजारी ने कहा : तूने जो किया है, वही दुनिया में हो रहा है। हर प्रेमी, जिसको प्रेम करता है, उसका मुंह काला कर देता है। इसको लोग प्रेम कहते हैं। कहीं मेरी सुगंध, कहीं मेरा प्रेम किसी और के पास न पहुंच जाए। तो सबने अपने-अपने ढंग से बांस की पोंगरियां बना ली हैं। हिंदू हिंदू से विवाह करेगा, मुसलमान मुसलमान से विवाह करेगा। और विवाह कर लेने के बाद भी कुछ पक्का नहीं है, दुनिया बड़ी है और हजारों बुद्ध, तरह-तरह के बेईमान घूम रहे हैं, तो सब द्वार-दरवाजे बंद रखेगा। चाहे जिसको प्रेम करता है, उसकी सांसें घुट रही हैं। चाहे उसके साथ-साथ उसकी खुद की घुट जाएं। और घर-घर में सांसे घुट रही हैं। मैं हजारों घरों में मेहमान हुआ हूं और मैंने घर-घर में सांसें घुटती देखी हैं। पत्नी रो रही है इसलिए कि उसने उस आदमी से शादी की जिससे प्रेम किया।

बड़े आश्चर्य की बात है! कुछ ऐसा लगता है कि लोगों को अपने दुश्मनों से प्रेम करना चाहिए। अपने दुश्मनों से कम से कम शादी तो करनी ही चाहिए। प्रेम चाहे किसी और से लेना, मगर शादी अपने दुश्मन से करना, छंटे दुश्मन से करना, क्योंकि जो व्यवहार तुम करने वाले हो बाद में...

प्रेम का तुम्हारा खयाल गलत है। और एक स्त्री होकर अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम्हारे भीतर कोई नहीं है... यह असंभव है। जैसे हर तरफ हर जमीन के नीचे पानी है—यह और बात है कि कहीं पचास फीट गहराई पर होगा और कहीं साठ फीट गहराई पर होगा। हर मनुष्य के भीतर प्रेम है। आदमी जरा कठोर है, कुआं जरा गहरा खोदना पड़ता है। स्त्री जरा तरल है, इतनी कठोर नहीं है। थोड़ी ही खुदाई करनी पड़ती है और पानी निकल आता है। लेकिन कभी-कभी यूं हो जाता है कि हम अपने चारों तरफ प्रेम के नाम पर जो होते देखते हैं, वह हमें कठोर बना देता है, वह हमें डरा देता है, वह हमें भयभीत कर देता है कि अगर यही प्रेम है तो ईश्वर प्रेम से बचाए।

ऐसे ही तुमने अपने पास एक दीवाल खड़ी कर ली होगी। उस दीवाल को गिरा दो। कोई जरूरत नहीं है कि उस दीवाल को गिराने के लिए ं, हम सब साथ-साथ हैं। हम कितने ही दूर-दूर

जब तुम ध्यान करो और जब आनंद से भर जाओ, तो एक काम करना मत भूलना। जब तुम आनंद से भर जाओ, तो अपने आनंद को सारे जगत को बांट देना। तभी उठना ध्यान से। ऐसा न हो कि ध्यान भी कंजूसी बन जाए। ऐसा न हो कि ध्यान को भी तुम तिजोड़ी में बंद करने लगा

तुम्हें शादी करनी पड़े और बच्चे पैदा करने पड़ें। इतना ही काफी है कि तुम्हारे बीच और इस बड़े मनुष्य-समाज के बीच, पक्षियों के बीच और पौधों के बीच दीवाल न रहे। हम सब जुड़े हैं, हम सब साथ-साथ हैं। हम कितने ही दूर-दूर हों, फिर भी बहुत पास-पास हैं। आखिर हम एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं। हम वहीं से पैदा होते हैं और वहीं एक दिन लीन हो जाते हैं। तो पहला तो सुझाव मैं यह दूंगा कि तुम अपनी यह भ्रांत धारणा छोड़ दो कि तुम्हारे पास कोई प्रेम नहीं या प्रेम तुम्हारा मार्ग नहीं। प्रेम के बिना तुम रूखी-सूखी हो जाओगी। प्रेम के बिना तुम ऐसी हो जाओगी, जैसे कोई मरुस्थल में प्यासा हो। यह दीवाल तोड़ दो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम प्रेम के मार्ग पर चलो। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि प्रेम के संबंध में तुम्हारी जो धारणा है, वह हटा दो। ध्यान के मार्ग पर चलो, वह तुम्हें प्रीतिकर लगता है, वह तुम्हें रुचिकर लगता है। जैसे ही तुम प्रेम के संबंध में अपनी गलत धारणा छोड़ दोगी, वैसे ही तुम पाओगी—तुम्हारे ध्यान की धारणा, तुम्हारे ध्यान का मार्ग अपने आप सरल हो गया। अपने आप सरस हो गया। अपने आप वे कठिनाइयां जो कल तक मालूम होती थीं, अब मालूम नहीं होतीं।

तक मालूम होती थीं, अब मालूम नहीं होतीं। तुमने पूछा है कि मैं बैठती हूं, साक्षी बन कर विचारों को देखती हूं। कभी-कभी विचार थम जाते हैं, क्षण भर को बड़ा आनंद आता है। और फिर विचार चल पड़ते हैं। और ऐसा ही हो रहा है। और ऐसा ही कब तक होता रहेगा?

यह तब तक होता रहेगा, जब तक कि तुम पहली भूल न सुधार लोगी। वह जो आनंद का थोड़ा सा अनुभव तुम्हें होता है क्षण भर को, वह बहुत बड़ा नहीं हो पाता; क्योंकि तुमने प्रेम को अवरुद्ध किया हुआ है। अगर प्रेम का बांध भी टूट जाए और आनंद का यह छोटा सा क्षण भी मिल जाए, तो तुम्हारे भीतर भी गंगा बहने लगे। फिर बड़े-बड़े अंतराल आने शुरू हो जाएंगे। देर-देर तक विचारों का कोई पता न रहेगा। और एक नई अनुभूति होगी कि यहां ध्यान बढ़ रहा है, वहां पीछे-पीछे प्रेम की सुगंध फैलती जा रही है। जिस दिन ध्यान और प्रेम तुम्हें दो न मालूम हों, उस दिन समझना कि मंजिल आ गई। जिस दिन ध्यान प्रेम हो और प्रेम ध्यान हो, उस दिन समझना कि मंदिर आ गया। अब कहीं और जाना नहीं है, यहीं आना था। तो शुरुआत में चुनाव करना पड़े, लेकिन अंत में कोई चुनाव नहीं है। अंत में प्रेम और ध्यान, दोनों एक हो जाते हैं। ध्यान तुम्हें अपने से मिला देता है और प्रेम तुम्हें सब से मिला देता है।

दोहरा दूं, ताकि तुम्हें भूल न जाए।

प्रेम के संबंध में तुम्हारी धारणा गलत है, उसे छोड़ दो। प्रेम का अर्थ वासना नहीं है। प्रेम का अर्थ सबके लिए सदभावना है।

गौतम बुद्ध के जीवन में यह उल्लेख है कि वे अपने हर भिक्षु को यह कहते थे कि जब तुम ध्यान करो और जब आनंद से भर जाओ, तो एक काम करना मत भूलना। जब तुम आनंद से भर जाओ, तो अपने आनंद को सारे जगत को बांट देना। तभी उठना ध्यान से। ऐसा न हो कि ध्यान भी कंजूसी बन जाए। ऐसा न हो कि ध्यान को भी तुम तिजोड़ी में बंद करने लगो। जो पाओ, उसे लुटा देना। फिर कल और आएगा, उसे भी लुटा देना। और जितना तुम लुटाओगे, उतना ज्यादा आएगा। एक आदमी खड़ा हुआ, उसने कहा : और सब ठीक है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य, लेकिन एक अपवाद मांगना चाहता हूं।

बुद्ध ने कहा : क्या अपवाद?

उसने कहा कि मैं ध्यान करता हूं, ध्यान करूंगा। और आप जैसा कहते हैं, वैसा ही ध्यान के बाद जो आनंद की अनुभूति होती है, प्रार्थना करूंगा कि हे विश्व, इस अनुभूति को सम्हाल ले। लेकिन इसमें मैं एक छोटा सा अपवाद चाहता हूं। वह यह कि मैं अपने पड़ोसी को इसके बाहर छोड़ना चाहता हूं। क्योंकि वह कमबख्त मेरे ध्यान का लाभ उठाए, यह मैं नहीं देख सकता। बस इतनी सी स्वीकृति—एक पड़ोसी। सारी दुनिया को ध्यान बांटने को राजी हूं। दूर से दूर तारों पर कोई रहता हो, मुझे कोई चिंता नहीं। मगर इस हरामखोर को...!

बुद्ध ने कहा : तब बड़ी मुश्किल है। तब तुम बात समझे ही नहीं। सवाल यह नहीं था कि इसको रा ज्यादा दे देंगे, दुश्मन को जरा कम दे देंगे। सवाल यह था कि दे देंगे, बेशर्त दे देंगे। और यह

प्रेम का इतना ही अर्थ है कि मेरा आनंद, मेरे जीवन की खुशी, मेरे जीवन की खुशबू बेशर्त बिना किसी कारण के सब तक पहुंच जाए

OSHO
BOOK SHOP
Shriram Building, Jawahar Nagar,
Near Hans Raj College, Malkaganj Chowk,
Delhi. Tel: 23854448

देना है या उसको देना है। सवाल यह नहीं था कि अपने को देना है और पराए को नहीं देना है। सवाल यह नहीं था कि दोस्त को जरा ज्यादा दे देंगे, दुश्मन को जरा कम दे देंगे। सवाल यह था कि दे देंगे, बेशर्त दे देंगे। और यह न पूछेंगे कि लेने वाला कौन है। और तुम वहीं अटक गए हो। तुम्हारा ध्यान आगे न बढ़ सकेगा। ये चांद-तारे तुम्हारे लिए कोई अर्थ नहीं रखते; इसलिए तुम तैयार हो इनको प्रेम देने को, ध्यान देने को, आनंद देने को। मगर वह पड़ोसी...।

तो बुद्ध ने कहा : तुमसे यह कहता हूं कि तुम सबकी फिकर छोड़ो—चांद की, तारों की। तुम इतनी ही प्रार्थना करो रोज ध्यान के बाद कि मेरा सारा आनंद मेरे पड़ोसी को मिल जाए। बस, तुम्हारे लिए इतना ही काफी है। दूसरों के लिए पूरी दुनिया भी छोटी है, तुम्हारे लिए तुम्हारा पड़ोसी भी सारी दुनिया से बड़ा मालूम होता है।

प्रेम का इतना ही अर्थ है कि मेरा आनंद, मेरे जीवन की खुशी, मेरे जीवन की खुशबू बेशर्त बिना किसी कारण के सब तक पहुंच जाए।

तो पहली तो यह बात याद कर लो कि प्रेम वही क्षण... जैसे गंगा गंगोत्री में छोटी सी होती है।

प्रेम एक सद्भाव है इस सारे अस्तित्व के प्रति। प्रेम एक करुणा है, जिसके ऊपर कोई पता नहीं। प्रेम एक आनन्द है—जैसे फूल खिलता है और उसकी बास चारों दिशाओं में बिखर जाती है, नहीं खोजती किन्हीं नासापुटों को

की तुम्हारी पुरानी धरणा गलत है। और दूसरी बात कि वह जो क्षण आता है ध्यान में, घबड़ा कर छोड़ मत देना। क्योंकि वही क्षण... जैसे गंगा गंगोत्री में छोटी सी होती है। इतनी छोटी होती है कि हिंदुओं ने वहां एक गोमुख बना रखा है। पत्थर के गोमुख से गंगोत्री निकलती है। और वही गंगोत्री हजारों मील की यात्रा करके इतनी बड़ी हो जाती है कि जब वह सागर से मिलती है तो उसका नाम गंगासागर है। उसको एक पार से दूसरे पार तक देखना मुश्किल हो जाता है।

वह जो छोटा सा क्षण है, वह अभी गंगोत्री है। अगर तुमने प्रेम के संबंध में सुधार कर लिया, तो उस गंगोत्री को गंगासागर बनने में देर न लगेगी। उसका गंगासागर बनना निश्चित है। इस अस्तित्व के नियम बदलते नहीं; वे सदा से वही हैं। अगर कभी कोई भूल-चूक होती है, भूल-चूक हमारी है। जगत के नियमों का कोई पक्षपात नहीं है।

—ओशो

कोंपलें फिर फूट आईं

प्रवचन नं. 6 से संकलित

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)